THE ECONOMIC TIMES

Date: 06-06-17

India needs to fast track its Thorium technology

There is credible action on the nuclear power front. But India must step up indigenous work. Last week, during Prime Minister Narendra Modi's visit to St Petersburg, India and Russia inked a pact to build Units 5 and 6 of 1,000 MW each at the Kudankulam nuclear plant. Moscow is to provide a loan to cover half the total capital cost of around Rs 50,000 crore — and supply all the nuclear fuel as well. It makes sense to leverage global expertise to boost domestic nuclear power generation capacity. Yet, it would be far more cost-effective to build plants that use both indigenous technology and fuel. We need to fast-forward thorium-fuelled nuclear plants for a variety of reasons.India has abundant thorium reserves and the thorium cycle in nuclear power plants produces far less nuclear waste. However, thorium is not ready fissile material. It needs a material such as plutonium to transmute to uranium-233. True, following the 2008 Indo-US civil nuclear deal, supplies of uranium fuel are no longer a constraint.

However, uranium is expensive and India imports several thousand tonnes annually to meet the bulk of its requirement in 6,700 MW of nuclear power capacity. (In comparison, a mega coal-fired thermal power plant requires over a thousand tonnes of fuel per day.) India has decided to build 10 nuclear plants of 700 MW each using indigenous pressurised heavy-water reactor technology. But these again would have uranium as fuel, which means more imports and high opex. Even with the promise of cheap solar, India needs to develop nuclear capability, to eventually reap the fruits of fusion energy.The way forward is to fast-forward indigenous technology such as the long proposed advanced heavy-water reactor, which would use 20 per cent uranium and 80 per cent thorium as fuel. We need to concretise plans for thorium power plants.

नवदुनिया

Date: 06-06-17

विदेश नीति को मिली है नई धार

अपनी सरकार के तीन साल पूरे होने के तुरंत बाद **प्रधानमंत्री** नरेंद्र मोदी ने जर्मनी, स्पेन, रूस और फ्रांस जैसे चार अहम देशों का बेहद कामयाब दौरा संपन्न् किया है। विशेषकर वैश्विक स्तर पर बढ़ते आतंकवाद और जलवायु परिवर्तन जैसे अहम मसले पर अमेरिका के बदले हुए रुख के दौर में यह दौरा खासा महत्वपूर्ण रहा है। विदेश नीति में प्रधानमंत्री मोदी की सक्रियता किसी से छिपी नहीं है। ऐसे में यह देखना जरूरी हो जाता है कि तीन साल के दौरान मोदी सरकार की विदेश नीति की क्या दशा-दिशा रही। असल में किसी भी सरकार के **प्रदर्शन** को परखने के लिए तीन साल

की अवधि बहुत कम है, विशेषकर मोदी सरकार के लिए तो यह और भी कम है जो कि देश का कायाकल्प करने के एजेंडे के साथ सत्ता में आई हो। एक ऐसी सरकार जो भारतीय राजनीति, समाज और अर्थव्यवस्था में आधारभूत बदलाव लाना चाहती है। ऐसे में हैरानी नहीं कि भाजपा मोदी सरकार के लिए दो से तीन और कार्यकाल चाहती है। फिर भाजपा के रणनीतिकार यह भी जानते होंगे कि लोकतंत्र का स्वभाव बड़ा चंचल होता है जहां कई बार मुश्किलें एकाएक दस्तक दे देती हैं और मुश्किलों का यह सिलसिला भी बड़ा लंबा खिंचकर अंतहीन हो जाता है जैसा कि अभी कांग्रेस पार्टी के साथ हो रहा है। ऐसे में भाजपा भले ही लंबे समय तक सरकार में बने रहने की रणनीति पर काम कर रही हो, लेकिन यह भी जरूरी हो जाता है कि सरकार के प्रदर्शन की नियमित रूप से परख होती रहे।विदेश नीति के मोर्चे पर मोदी सरकार का प्रदर्शन बेहद शानदार रहा है। हालांकि यह बात सरकार के आलोचकों के गले नहीं उतरेगी, लेकिन आप दुनिया के किसी भी कोने में जाइए तो आपको महसूस होगा कि तीन साल पहले नई दिल्ली के बारे में बनी धारणा अब काफी हद तक बदली है। नरेंद्र मोदी ने भारतीय हितों की इतनी मजबूती से पैरवी की जिसने तमाम विश्लेषकों को चौंकाया, क्योंकि जब उन्होंने सत्ता संभाली थी तो विदेश नीति के मोर्चे पर उन्हें कुछ भी अनुभव नहीं था। इस दौरान वैश्विक मामलों में उन्होंने भारत की पूछ-परख बढ़ाई है और यहां तक कि उनके विरोधी भी उन्हें इसका श्रेय देंगे।

उनके कार्यकाल की शुरुआत में यही दलील दी गई कि मोदी भले ही बहुत तन्मयता और जोश के साथ विदेश नीति को आगे बढ़ा रहे हों, लेकिन उसमें कोई ठोस बदलाव नहीं ला पाएंगे। हालांकि इस सच से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि ताकतवर देशों में नेतृत्व के स्तर पर परिवर्तन होने से विदेश नीति में नाटकीय परिवर्तन नहीं होता। इसकी रूपरेखा तैयार करने में ढांचागत या बुनियादी कारक कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण होते हैं। इसके उलट अगर हम बारीकी से गौर करें तो पाएंगे कि इस दौरान भारतीय विदेश नीति में कुछ आमूलचूल बदलाव आए हैं। इससे पहले भारतीय कूटनीति ने वैश्विक स्तर आ रहे क्रांतिकारी बदलावों पर शायद ही कभी इतनी चतुराई से ताल बिठाई हो। इस लिहाज से मोदी सरकार भारतीय विदेश नीति के चक्र को सुचारू रूप से चलाने में जरा भी विचलित नहीं हुई है। भारत-अमेरिका संबंधों को तेजी से आगे बढ़ाने में झिझक अब इतिहास की बात हो गई है। इसरायल के साथ भारत के संबंध भी आखिरकार मुखरता के साथ मजबूत हुए हैं। सबसे बड़ा बदलाव चीन के स्तर पर आया है जहां भारत अब चुपचाप नहीं बैठ अपने पड़ोसी को तल्ख तेवर दिखाने से गुरेज नहीं करता। गुटनिरपेक्षता को बड़े सलीके से दफन कर दिया गया है और ताकतवर देशों के साथ पारस्परिक व्यवहार के आधार पर ही कूटनीतिक संबंध बनाए जा रहे हैं। गुटनिरपेक्षता के नाम पर नई दिल्ली लंबे समय से चीनी हितों की खुशामद में ही लगी थी। अब भारत चीन की परिधि में भी दबाव बनाने और हिंद-प्रशांत क्षेत्र में स्थायित्व के लिए अमेरिका, जापान और ऑस्ट्रेलिया की तरह ताकत का इस्तेमाल करने से नहीं हिचकता। हालांकि भारत में बुद्धिजीवियों का एक वर्ग आज भी अमेरिकी विरोध की बांसुरी बजाने में ही मगन है, लेकिन उनकी परवाह न करते हुए मोदी ने अपने निर्णायक जनादेश का इस्तेमाल अमेरिका से संबंध मजबूत बनाने में किया है ताकि भारत की प्रगति के लिए उन्हें अमेरिकी पूंजी और तकनीक का साथ मिल सके। इस क्षेत्र में चीन की बढ़ती ताकत और दादागीरी को चुनौती देने में वह किसी ऊहापोह के शिकार नहीं हैं।

इसका अर्थ है कि भारत के प्रतिद्वंद्वी देशों को अब विदेश नीति में भारत के बदले हुए तेवरों से दो-चार होना पड़ रहा है। इससे पहले चीन और पाकिस्तान की करतूतों के जवाब में भारत की ढुलमुल और अपेक्षित प्रतिक्रिया ही नजर आती थी, लेकिन मोदी सरकार ने इन रिश्तों में चौंकाते हुए धारणा बदलने का काम किया है। इससे भारत को अपने दांव चलने में काफी सामरिक गुंजाइश मिली है। भारत अब उन रास्तों से भी परहेज नहीं कर रहा, जिनसे अतीत में वह बचता आया है जिसका परिणाम यही होता था कि भारत की सैन्य कार्रवाई से भी पाकिस्तान साफ इनकार कर देता था। लंबे समय तक पाकिस्तान ही सीमा पर भारत के धैर्य की परीक्षा लेता आया है, लेकिन अब तस्वीर उलट गई है। वन बेल्ट, वन रोड की चीनी मुहिम पर भी ऐसा ही हुआ जो चीन को यही संदेश देता है कि भारत अंतिम वक्त तक अपने पत्ते नहीं खोलता और सीपीईसी के रूप में चीन-पाक सांठगांठ का कई तरह से जवाब दे सकता है।निश्चित रूप से चुनौतियां कम नहीं हैं। मोदी सरकार जोखिम लेने के लिए तैयार है और जोखिमों के साथ उनके लिए चुकाई जाने वाली कीमत भी जुड़ी होती है। इस समय पश्चिमी देशों में कई आधारभूत बदलाव आंतरिक राजनीतिक विमर्श की दिशा बदल रहे हैं। साथ ही शक्तिशाली देशों के संबंधों में समीकरण भी बदल रहे हैं जिनसे भारत को पूरी

गंभीरता के साथ निपटना होगा। जैसे चीन-रूस की बढ़ती करीबियां दीर्घावधि में भारत के हितों को काफी प्रभावित कर सकती हैं। इसी तरह ट्रंप के नेतृत्व में चीन-अमेरिकी संबंधों के भी परवान चढ़ने के संकेत मिल रहे हैं।अगर भारत की आर्थिक बुनियाद ऐसे ही मजबूत बनी रही और वह अपनी रक्षा नीति को सही तरह से आकार देने में सफल रहता है तो इससे उपजे आत्मविश्वास के दम पर भारत को इन चुनौतियों से निपटने में परेशानी नहीं होगी। कुल मिलाकर तीन साल पहले सत्ता संभालने के दौरान जिस नेता की प्रांतीय सोच को लेकर आलोचना की जा रही थी, उसने भारतीय विदेश नीति को चरणबद्ध रूप से उस निर्णायक दिशा में अग्र्रसर किया है जिस दिशा में कदम बढ़ाने की उनके पूर्ववर्तियों ने हिम्मत नहीं दिखाई। उनके आलोचक लगातार इससे असहमति जताएंगे, लेकिन सत्ता के शीर्ष पर कुछ वर्षों तक मोदी की मौजूदगी में भारतीय विदेश नीति निश्चित रूप से खासी अलहदा नजर आएगी। भारतीय राजनीति का भी जिस दक्षिणपंथ की ओर निर्णायक झुकाव हुआ है, वह भी एक आधारभूत बदलाव ही है जिसकी अनुगूंज दुनियाभर में सुनाई पड़ेगी।

हर्ष वी पंत (लेखक लंदन स्थित किंग्स कॉलेज में अंतरराष्ट्रीय संबंधों के प्राध्यापक हैं)

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 06-06-17

भारत के लिए अवसर

अमेरिका के राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप ने 68 वर्ष पुराने नाटो समझौते के अहम प्रतिरोध के प्रावधान पर देश की प्रतिबद्धता को नए सिरे से दोहराने से मना कर दिया था। इससे यह संकेत निकला कि दूसरे विश्व युद्ध के बाद की विश्व व्यवस्था में अहम बदलाव आ रहा है। पिछले दिनों पेरिस जलवायु समझौते से बाहर निकलने के उनके निर्णय को भी उतना ही महत्त्व दिया जाना चाहिए। एक प्रकार से अमेरिका ने वैश्विक नेतृत्व का भी समर्पण कर दिया है। कोयला खनन संबंधी रोजगार पैदा करना ट्रंप का एक अहम वादा था लेकिन सच यह है कि कोयला खनन संबंधी रोजगारों का स्थान तेजी से स्वचालन ले रहा है और नवीकरणीय ऊर्जा से पैदा हो रहे रोजगार राष्ट्रपति के वादे को धक्का पहुंचा सकते हैं। जलवायु परिवर्तन पर अमेरिका के इस कदम का क्या असर होगा, इसका आकलन किया जा रहा है। परंतु चीजें बहुत स्पष्ट नहीं हैं। जर्मन चांसलर एंगेला मर्केल के शब्दों में कहें तो अमेरिकी राष्ट्रपति के कार्यकारी आदेश के अस्वीकरण, (जैसा कि क्योटो प्रोटोकॉल के वक्त हुआ था, अमेरिकी कांग्रेस ने उसे भी स्वीकृत नहीं किया था) को लेकर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ऐसा ही भाव है जैसे दुनिया के सबसे ताकतवर लोकतंत्र को अब विश्वसनीय साथी नहीं माना जा रहा है। आश्चर्य नहीं कि अधिनायकवादी चीन जो दुनिया की दूसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था वाला देश है और दूसरा सबसे बड़ा कार्बन उत्सर्जक भी है, उसने इसका फायदा उठाया। इस वर्ष दावोस शिखर बैठक में चीन के राष्ट्रपति शी चिनफिंग ने वैश्वीकरण के महत्त्व पर बात की। यह ट्रंप के संरक्षणवाद को संबोधित वक्तव्य था। उनकी सरकार पहली ऐसी सरकार थी जिसने अमेरिका के पीछे हटने के बाद यूरोपीय संघ से संपर्क किया कि वह पेरिस समझौते के अधीन अपनी प्रतिबद्धता दोहराए। इसी प्रकार प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने भी यूरोप से पेरिस समझौते के साथ होने की जो टिप्पणी की है वह भारत को एक जिम्मेदार देश का दर्जा प्रदान करती है। इस मामले में वह चीन का निकट सहयोगी नजर आता है। दोनों देश मिलकर जलवायु परिवर्तन पर दुनिया का नेतृत्व कर सकते हैं। ट्रंप ने ऐसे आंकड़ों पर भरोसा किया जो अविश्वसनीय तौर पर यह बताते थे कि भारत और चीन को कार्बन उत्सर्जन के मामले में अमेरिका से ज्यादा रियायत मिली हुई है। उनके वक्तव्य में तीन तथ्यों की अनदेखी कर दी गई। पहली, भारत कुल वैश्विक उत्सर्जन के बमुश्किल पांच फीसदी के लिए जिम्मेदार है और उसका प्रति व्यक्ति 2 टन उत्सर्जन अमेरिका के 20 टन प्रति व्यक्ति उत्सर्जन के 10वें हिस्से के बराबर है। दूसरी बात वर्ष 2030 तक जहां चीन का प्रति व्यक्ति उत्सर्जन 14 टन होने का अनुमान है (वर्तमान में 8 टन) वहीं भारत का अनुमान अधिकतम 7 टन तक ही पहुंचता है।

तीसरी बात, मोदी सरकार वर्ष 2030 तक अपनी कुल बिजली का 40 फीसदी नवीकरणीय स्रोतों से हासिल करने के लिए काफी उत्साह के साथ काम कर रही है। इसमें वर्ष 2022 तक 100 गीगावॉट सौर ऊर्जा हासिल करने का लक्ष्य शामिल है।भारत इस समय चीन और जापान के बाद सबसे बड़ा सौर ऊर्जा बाजार है। ट्रंप ने कहा कि भारत स्वच्छ ऊर्जा कार्यक्रमों के लिए अमेरिका पर निर्भर है। यह सही नहीं है। ये योजनाएं पूरी तरह घरेलू फंडिंग पर आधारित हैं जो कोयला उपकर से आता है। अब इसे बढ़ाकर 50 रुपये प्रति टन की जगह 400 रुपये प्रति टन कर दिया गया है। हालांकि 54,000 करोड़ रुपये के स्वच्छ ऊर्जा फंड की काफी राशि का इस्तेमाल नहीं हुआ है। जनवरी तक सिर्फ आधी राशि स्वच्छ पर्यावरण फंड में डाली गई। इन परियोजनाओं पर केवल 9,000 करोड़ रुपये व्यय हुए। पेरिस में उत्पन्न संकट भारत के लिए अवसर है कि वह इस दिशा में प्रयास बढ़ाए।

जनसत्ता

Date: 06-06-17

सिर्फ नारों से नहीं बचेगी पृथ्वी

काफी समय से पेरिस जलवायु समझौते की आलोचना कर रहे अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने आखिरकार अमेरिका को इस समझौते से अलग कर लिया। ट्रंप का कहना है कि इस समझौते से भारत और चीन को अनुचित लाभ मिल रहा है। पेरिस समझौते के तहत दोनों देश अगले कुछ वर्षों में कोयले से संचालित बिजली संयंत्रों को दोगुना कर लेंगे और भारत को अपनी योजनाएं पूरी करने के लिए अच्छी-खासी वित्तीय सहायता प्राप्त होगी। ट्रंप को आशंका है कि इस तरह भारत, चीन के साथ मिलकर अमेरिका पर वित्तीय बढ़त हासिल कर लेगा। उनका मानना है कि पेरिस समझौता अमेरिका के लिए अनुचित है क्योंकि इससे उसके उद्योगों और रोजगार पर बुरा असर पड़ रहा है। ट्रंप ने पेरिस समझौते से हटने के संकेत जी-7 सम्मेलन के दौरान ही दे दिए थे। 2015 में अमेरिका समेत लगभग दो सौ देशों ने पेरिस में एक समझौते पर हस्ताक्षर किए थे। इसके तहत 2025 तक कार्बन डाइआॅक्साइड के उत्सर्जन में 26 से 28 फीसद (वर्ष 2005 के स्तर से) तक की कमी लाने पर सहमति बनी थी। इसके साथ ही विकासशील और अविकसित देशों को रियायती दरों पर हरित तकनीक मुहैया कराने और आर्थिक पैकेज देने की बत कही गई थी।

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि आज पृथ्वी को बचाने के लिए भाषणबाजी तो बहुत होती है लेकिन धरातल पर काम नहीं हो पाता है। यही कारण है कि पर्यावरण की स्थिति बद से बदतर होती जा रही है। पिछले दिनों नासा के एक अध्ययन ने बताया कि इस साल की जनवरी पिछले 137 वर्षों की तीसरी सबसे गर्म जनवरी थी। इस साल फरवरी और मार्च और अप्रैल भी गर्म रहा। यह हम सबके साथ-साथ समाज के उस वर्ग के लिए भी चिंता का विषय है जो ग्लोबल वार्मिंग पर चर्चा करने को एक फैशन मानने लगा था। दरअसल, इन दिनों संपूर्ण विश्व में पृथ्वी को बचाने के नारे जोर-शोर से सुने जा सकते हैं, लेकिन जब नारे लगाने वाले ही इस अभियान की हवा निकालने में लगे हों तो पृथ्वी पर संकट के बादल मंडराने तय हैं।

आज दुनिया में अनेक मंचों से पृथ्वी बचाओ की जो गुहार लगाई जा रही है उसमें एक अजीब विरोधाभास दिख रहा है। पृथ्वी सभी बचाना चाहते हैं लेकिन अपने त्याग के बल पर नहीं, दूसरों के त्याग के भरोसे। टिकाऊ विकास, हरित अर्थव्यवस्था और पर्यावरण संबंधी अन्य चुनौतियों पर चर्चा जरूरी है, लेकिन इसका फायदा तभी होगा जब हम व्यापक दृष्टि से सभी देशों के हितों पर ध्यान देंगे। हरित अर्थव्यवस्था की अवधारणा यह है कि पर्यावरण को नुकसान पहुंचाए बिना सभी वर्गों की तरक्की हो। लेकिन दुर्भाग्यपूर्ण यह है कि विकसित देश इस अवधारणा के क्रियान्वयन के लिए विकासशील देशों की अपेक्षित सहायता नहीं करते हैं। स्पष्ट है कि विकसित देशों की हठधर्मिता की वजह से

पर्यावरण के विभिन्न मुद्दों पर कोई स्पष्ट नीति नहीं बन पाती है।इस दौर में पर्यावरण को लेकर विभिन्न अध्ययन प्रकाशित होते रहते हैं। कभी-कभी इन अध्ययनों की विरोधाभासी बातों को पढ़ कर लगता है कि पर्यावरण और जलवायु परिवर्तन जैसे मुद््दों पर हौवा खड़ा किया जा रहा है। लेकिन जब पर्यावरण के बिगाड़ पर गौर किया जाता है तो जल्दी ही यह भ्रम टूट जाता है। वास्तव में हम पिछले अनेक दशकों से भ्रम में ही जी रहे हैं। यही कारण है कि पर्यावरण के अनुकूल तकनीक के बारे में सोचने की फुरसत किसी को नहीं है। पुराने जमाने में पर्यावरण के हर अवयव को भगवान का दर्जा दिया जाता था। इसीलिए हम पर्यावरण के हर अवयव की इज्जत करना जानते थे। नए जमाने में पर्यावरण के अवयव वस्तु के तौर पर देखे जाने लगे और हम इन्हें मात्र भोग की वस्तु मानने लगे। उदारीकरण की आंधी ने तो हमारे सारे ताने-बाने को ही नष्ट कर दिया। हमें यह मानना होगा कि जलवायु परिवर्तन की समस्या किसी एक शहर, राज्य या देश के सुधरने से हल होने वाली नहीं है। पर्यावरण की कोई ऐसी परिधि नहीं होती कि एक जगह प्राकृतिक संसाधनों का दोहन या प्रदूषण होने से उसका प्रभाव दूसरी जगह न पड़े। इसीलिए इस समय संपूर्ण विश्व में पर्यावरण को लेकर चिंता देखी जा रही है। हालांकि इस चिंता में खोखले आदर्शवाद से लिपटे नारे भी शामिल हैं। जलवायु परिवर्तन पर होने वाले सम्मेलनों में हम इस तरह के नारे सुनते रहते हैं।

सवाल यह है कि क्या खोखले आदर्शवाद से जलवायु परिवर्तन का मसला हल हो सकता है? यह सही है कि ऐसे सम्मेलनों के माध्यम से विभिन्न बिंदुओं पर सार्थक चर्चा होती है और कई बार कुछ नई बातें भी निकल कर आती हैं। लेकिन यदि विकसित देश एक ही लीक पर चलते हुए केवल अपने स्वार्थों को तरजीह देने लगें तो जलवायु परिवर्तन पर उनकी बड़ी-बड़ी बातें बेमानी लगने लगती हैं। यह बात किसी से छिपी नहीं है कि यदि ग्रीनहाउस गैसों की वृ्द्धि इसी तरह जारी रही तो दुनिया में लू, सूखे, बाढ़ व समुद्री तूफान जैसी प्राकृतिक आपदाओं की आवृत्ति बढ़ जाएगी। कुपोषण, पेचिश, दिल की बीमारियों तथा श्वसन संबंधी रोगों में इजाफा होगा। बार-बार बाढ़ आने और मच्छरों के पनपने से हैजा तथा मलेरिया जैसी बीमारियां बढ़ेंगी। तटीय इलाकों पर अस्तित्व का संकट पैदा हो जाएगा और अनेक परिस्थितिक तंत्र, जंतु तथा वनस्पतियां विलुप्त हो जाएंगी। तीस फीसद एशियाई प्रवाल भित्ति जो कि समुद्री जीवन का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है, अगले तीस सालों में समाप्त हो जाएंगी। वातावरण में कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा बढ़ने से समुद्र के अम्लीकरण की प्रक्रिया लगातार बढ़ती चली जाएगी जिससे खोल या कवच का निर्माण करने वाले प्रवाल या मूंगा जैसे समुद्री जीवों और इन पर निर्भर रहने वाले अन्य जीवों पर नकारात्मक प्रभाव पडेÞगा।दरअसल, उन्नत भौतिक अवसंरचना (फिजिकल इन्फ्रास्ट्रक्चर) जलवायु परिवर्तन के विभिन्न खतरों जैसे बाढ़, खराब मौसम, तटीय कटाव आदि से कुछ हद तक रक्षा कर सकती है। ज्यादातर विकासशील देशों में जलवायु परिवर्तन के प्रति सफलतापूर्वक अनुकूलन के लिए आर्थिक व प्रौद्योगिकीय स्रोतों का अभाव है। यह स्थिति इन देशों में उस भौतिक अवसंरचना के निर्माण की क्षमता में बाधा प्रतीत होती है जो कि बाढ़, खराब मौसम का सामना करने तथा खेती-बाड़ी की नई तकनीक अपनाने के लिए जरूरी है। हरेक पारिस्थितिक तंत्र के लिए अनुकूलन विशिष्ट होता है। विभिन्न तौर-तरीकों से जलवायु परिवर्तन को नियंत्रित किया जा सकता है। इन तौर-तरीकों में ऊर्जा प्रयोग की उन्नत क्षमता, वनों के काटने पर नियंत्रण और जीवाश्म ईंधन का कम से कम इस्तेमाल जैसे कारक प्रमुख हैं।विकसित देशों (जिनमें अमेरिका, कनाडा,आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड तथा पश्चिम यूरोप के देश शामिल हैं) की जनसंख्या विश्व की जनसंख्या की 22 फीसद है जबकि वे 88 फीसद प्राकृतिक संसाधनों तथा 73 फीसद ऊर्जा का इस्तेमाल करते हैं। साथ ही विश्व की पचासी फीसद आय पर उनका नियंत्रण है। दूसरी ओर, विकासशील देशों की जनसंख्या विश्व की जनसंख्या का 78 फीसद है जबकि वे 12 फीसद प्राकृतिक संसाधनों तथा 27 फीसद ऊर्जा का ही इस्तेमाल करते हैं। उनकी आय विश्व की आय का सिर्फ पंद्रह फीसद है।इन आंकड़ों से स्पष्ट हो जाता है कि विकसित देश कम जनसंख्या होने के बावजूद प्राकृतिक संसाधनों का अधिक इस्तेमाल कर अधिक प्रदूषण फैला रहे हैं। इसलिए उत्सर्जन कम करने की ज्यादा जिम्मेदारी उन्हें ही उठानी चाहिए। विकासशील देशों को नसीहत देने से पहले विकसित देश अपने गिरेबान में नहीं झांकें। अब हमें यह समझना होगा कि सिर्फ नारों से पृथ्वी नहीं बचेगी।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 05-06-17

प्रकृति से लगाव या तलाक

प्रत्येक वर्ष की भांति इस बार भी विश्व पर्यावरण **दिवस** 5 जून आ गया। इस बार भी हम लोग सेमिनार, गोष्ठी **आदि** में अपने विचार रखेंगे और गोष्ठी से निकलते ही प्रकृति के प्रति उदासीन रवैया अपनाते हुए अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए प्रकृति के द्वारा की गई संसाधनों के द्वारा दोहन के तरफबढ़ जाएंगे।1972 के संयुक्त राष्ट्र **सम्मेलन** (मानव पर्यावरण) के बाद से ही ये दिवस मनाया जा रहा है। और इस दिन हम लोग एक रीति-रिवाज की तरह सफाई करेंगे, कुछ पेड़-पौधे लगाए जाएंगे जो कुछ ही दिन में सूख जाएंगे और **पर्यावरण** को बचाने के लिएचिंता जाहिर की जाएगी। इस बार का जो मुख्य विषय है; वो है प्रकृति से लोग कैसे जुड़ें? ये हम लोगों को अपने **उत्तरदायित्व** का ज्ञान करा रहा है। इस संबंध में मुंशी प्रेमचंद की वो उक्ति याद आती है, "जब हम लोग राह भटक जाते हैं, अपने संकुचित मानसिकता से ग्रसित हो जाते हैं तो अपने उत्तरदायित्व का ज्ञान हमारे संकुचित मानसिकता से उबरने में सहायक होता है।' भारत भौगोलिक **विविधताओं** का देश है। उत्तर में हिमालय की पर्वतमालाएं, दक्षिण के पठार और 7600 किमी लंबा तटीय क्षेत्र, पश्चिम का मरूस्थल और पूर्व का जैव विविधता का हॉट स्पाट है। भारत में पुराने समय में अपने जीवन की चौथी अवस्था "वानप्रस्थ' में हिमालय और अन्य प्राकृतिक **सौंदर्य** से भरपूर जगहों पर जाकर ध्यान (मेडिटेशन) करने की परम्परा रही है। आज का विषय हमें उसी चीज की याद दिलाता है। इस **संदर्भ** में अभी जलवायु परिवर्तन न्यूनीकरण पर ट्रंप के हथौड़े का जिक्र जरूरी है। ये नियंतण्र शर्म की बात है कि 194 देशों द्वारा संयुक्त रूप से पेरिस जलवायु परिवर्तन से संबंधित विचारों के मानने के बाद भी एक बड़े देश का हटना नियंतण्र दुर्घटना से कम नहीं। आज विश्व के सामने जलवायु परिवर्तन की विकराल समस्या आ खड़ी हुई है। इसमें दो राय **नहीं** कि तापमान में वृद्धि हो रही है और असामयिक बारिश से बाढ़ की समस्या एक स्थायी समस्या बन गया है। यह विडम्बना ही है कि करीब 5.17 अरब टन (2015 के आंकड़े) कार्बन उत्सर्जन करने वाला अमेरिका अब इस समझौते से अलग हो गया है। इस तरह 3 अरब "हरित जलवायु कोष' के लिए अपना वादा खत्म करना चाहता है। भारत, चीन और दूसरे विकासशील देशों के लिए एक नई समस्या आ खड़ी हुई है। यह मानवतावादी पहल से उलटने वाला फैसला है। परंतु भारत को अपनी क्षमता को बढ़ाते हुए अपनी हरित प्राविधिकी क्षमता को बढ़ाते हुए **अन्य** छोटे विकसशील देशों को हरित प्रौद्योगिकी की सहायता देनी चाहिए। यह संतोष की बात है कि भारतीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने पेरिस समझौते से अपना नाता जारी रखने के लिए प्रतिबद्धता जताई है। भारत कार्बन उत्सर्जित करने वाला चौथा देश है। इसे यूरोपियन यूनियन, चीन, कनाडा आदि देशों के साथ मिलकर इस फैसले का विरोध करना चाहिए और इस संधि से पुन: जुड़ने के लिएबाध्य करना चाहिए। पुन: बातचीत की बात अमेरिका द्वारा करना हास्यास्पद प्रयास है। यह संयुक्त राष्ट्र प्रक्रिया पर घातक प्रहार है और संयुक्त राष्ट्र समझौतों को अपने "लोकप्रिय चुनावी वादों' का शिकार बनाना गलत है। हमें प्रकृति से जुड़ने की आवश्यकताओं के प्रति ध्यान देते हुए यह समझना है होगा कि प्रकृति हमारी आवश्यक आवश्यकताओं की पूरक है। हमारे राष्ट्रपति ने सही ही कहा है कि, "पृवी मानव की आवश्यक **आवश्यकताओं** की पूर्ति करता है न कि हमारे लालच की।' गांधी जी ने इस संबंध में आत्मनियंतण्रकी बात की थी। आज सभी नागरिकों का ये कर्त्तव्य है कि हम मूलभूत जरूरतों जैसे-खाद्य, वस्त्र, आवास, ऊर्जा और चारे आदि की आवश्यकताओं के साथ-साथ पृवी की सीमाओं को भी समझना होगा। नई गिने-चुने प्राविधिकी को अपनाते हुए हमें प्रकृति की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए ही काम करना होगा। प्रकृति और मानव स्वास्य का बहुत गहरा संबंध है। अभी भी गांवों में लोग अपने घरों के किचन गार्डन या होम गार्डन में ऐसी जड़ी-बूटियां पैदा करते हैं, जो बीमारी में काम आती है। जंगलों और पहाड़ों में पाई जाने वाली जड़ी-**बूटियां** हमारे स्वास्य के लिएबहुत

आवश्यक हैं। परंतु हमारा सहयोग विश्व बाजार में 10 फीसद से भी कम है। क्योंकि अभी भी उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश, केरल व तमिलनाडु में बहुत सारी ऐसी जड़ी-बूटियां पैदा की जाती हैं लेकिन हम उसका अच्छा मूल्य और बाजार अभी तक प्रदान नहीं कर पाए हैं। प्रकृति हमारे प्रदूषण का "विस्थापन स्थल' है। यदि हमें किसी चीज की जरूरत नहीं होती है तो उसे हम प्रकृति में ही विसर्जित कर देते हैं। प्रकृति के तरफ हमारा लगाव भारत की समृद्धि के लिए अति आवश्यक है। घरों और शहरों के कूड़ा-कचरा आदि से ऊर्जा बनाने और कम्पोस्ट के लिए प्रयोग किया जा सकता है। ये शहरों के "हर्बल होम रेमेडी' या "हर्बल गार्डन' के लिएप्रयोग किए जा सकते हैं।जलापूर्ति की जरूरत हमें प्रकृति द्वारा प्रदान की गई है। हमारी नदियां विश्व की दूसरी नदियों से इसलिएअलग हैं क्योंकि ये हमें जीविका प्रदान करती हैं। इसी तरह "वाटर हार्वेस्टिंग' को हमें जीवन का अंग बनाना होगा। जैसा शहरों में जल की समस्या आगे गांवों में भी बन सकती है। पहाड़ों के प्राकृतिक क्षेत्र में लोग परम्परागत रूप में प्राकृतिक आपदाएं जैसे-भू स्खलन, मृदा अपरदन, पत्थर गिरना आदि को रोकने के लिए कई विशेष प्रकार के जंगल और वनस्पतियों का रोपण करते थे। अंत में प्रकृति की सुरक्षा के लिए युवा और छात्रों की भागीदारी को लेना अति आवश्यक है। इस आलोक में देश के कई विविद्यालय और कॉलेज अपना मूल्यवान योगदान से सकते हैं यदि हम उनके पठन-पाठन में इसे जोड़ें। आशा है नई शिक्षा और स्वास्य नीति पर्यावरण और प्रकृति की दिशा में प्रयास करेगी।(लेखक प्रख्यात भूगोलविद हैं)